वीर संवत् २४९२, पोष कृष्ण १४, गुरुवार
दि. २०-१-१९६६, श्लोक १२ से १६, प्रवचन नं.४

१२वीं गाथा का भावार्थ। क्या चलता है यह ? अनादिकाल से मिथ्यादर्शन के जोर से मिथ्यादर्शन-मिथ्याश्रद्धा के कारण से आत्मा के स्वरूप के मान बिना, इसने अनन्तबार मिथ्यात्व का सेवन करके चार गति के दुःख अनन्तबार सहन किये हैं। उसमें ग्रन्थकार ने निगोद से शुरुआत की है। आचार्यने (भी) निगोद से शुरु किया है। निगोद के अनन्त दुःख (सहन किये हैं।) वहाँ से निकलकर तिर्यंच (में आया), उसके भी अनन्त दुःख (सहन किये हैं)। यहाँ से तिर्यंच में से नारकी की बात है। अन्तिम बात है, देखो !

'**उन नरकों में इतनी तीव्र भूख लगती है...**' भूख इतनी है कि '**यदि मिल जाए तो तीनों लोकों का अनाज खा जाए... परन्तु वहाँ खाने के लिए एक दाना भी नहीं मिलता।**' यहाँ ज़रा पन्द्रह मिनिट, दस मिनिट देरी हो जाए तो थनगनाट हो जाए। भाई ! गर्म का ठण्डा हो जाए। वहाँ अनन्तबार ऐसे दुःख सहन किये हैं। एक अनाज का कण नहीं मिलता और तीन लोक का अनाज दो तो एक बिन्दु की तरह समाप्त हो जाए - इतनी भूख (लगती है।) आहा...हा...! यह अतिशयोक्ति नहीं है, हाँ ! कोई ऐसा माने (तो) यह अतिशयोक्ति नहीं है। मित्याश्रद्धा के फल में ऐसे (दुःख) अनन्तबार (सहन किये हैं।) अनादिकाल का (आत्मा) है। अनन्तबार दुःख सहन किये हैं। देखो !

'**उन नरकों में यह जीव ऐसे अपार दुःख दीर्घकाल...**' शास्त्र तो ऐसा कहता है कि

पहले नरक की आयु दस हजार वर्ष है। वह दस हजार वर्ष (में) अनन्त बार उत्पन्न हुआ। पहले नरक में दस हजार वर्ष और एक समय की आयु में अनन्तबार उत्पन्न हुआ। समझ में आया ? ऐसे दस हजार वर्ष और दो समय में अनन्तबार उत्पन्न हुआ, ऐसे तीन, चार, पाँच, छह, सात... संख्य, असंख्य अन्तर्मुहूर्त फिर उसके समय-समय में वह एक सागर की स्थिति के जितने समय होते हैं, उतने एक-एक समय में अनन्तबार नरक में उत्पन्न हुआ है। इसमें समझ में आया या नहीं ?

नरक के अन्दर एक दस हजार वर्ष का आयुष्य और सातवें का उत्कृष्ट (आयुष्य) तैतीस सागर हैं तो एक-एक समय के एक दश हजार (वर्ष) अनन्तबार; दश हजार वर्ष और एक समय अनन्तबार; चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, अन्तर्मुहूर्त ऐसे करते-करते पल्योपम और सागरोपम और ऐसे जाए तेंतीस (सागर)। उतने समय होते हैं, उन समय-समय की स्थिति में अनन्तबार परिभ्रमण करनेवाला प्रत्येक जीव उत्पत हुआ है। कहो, समझ में आया कुछ ? उसमें से किसी समय शुभभाव हो जाते हैं। समझ में आया ? तो '**शुभकर्म के उदय से वह प्राणी मनुष्यगति को प्राप्त करता है।**' उसमें से शुभकर्म के कारण मनुष्यगति (में उत्पन्न होता है) शुभ कर्म अर्थात् उसका मूलभाव-शुभभाव हुआ, उससे मनुष्यपना पाता है।

अब मनुष्यपने के दुःख का वर्णन तीन का दुःख हो गया। निगोद, उसमें से तिर्यंच, उसमें से यह नारकी। नारकी... नारकी !

मनुष्यगतिमें गर्भनिवास तथा प्रसवकालके दुःख

जननी उदर वस्यो-नव मास, अंग सकुचतैं पायो त्रास;
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर।।१३।।

अन्वयार्थ :- [मनुष्यगतिमें भी यह जीव] (नव मास) नौ महीने तक (जननी) माता के (उदर) पेटमें (वस्यो) रहा; [तब वहाँ] (अंग) शरीर (सकुचतैं) सिकोड़कर रहने

से (त्रास) दुःख (पायो) पाया, [और] (निकसत) निकलते समय (जो) जो (घोर) भयंकर (दुख पाये) दुःख पाये (तिनको) उन दुःखों को (कहत) कहने से (और) अन्त (न आवे) नहीं आ सकता।

भावार्थ :- मनुष्यगति में भी यह जीव नौ महीने तक माता के पेटमें रहा; वहा; शरीर को सिकोड़कर रहने से तीव्र वेदना सहन की, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कभी-कभी तो माता के पेटसे निकलते समय माता का अथवा पुत्र का अथवा दोनोंका मरण भी हो जाता है।।१३।।

मनुष्यगति में गर्भ निवास और प्रसवकाल के दुःख।

जननी उदर वस्यो-नव मास, अंग सकुचतैं पायो त्रास;

निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर।।१३।।

'**(मनुष्यगति में भी यह जीव) नौ महीने तक माता के (उदर में)...**' एक बार रहा। समझ में आया ? एक बार रहा अर्थात् ? नव महीने तक एक बार, दूसरी बार नव (महीने) - ऐसे अनन्त-अनन्तबार नव महीने तक मनुष्य के गर्भवास में रहा। शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि माता के पेट में पौधे के रूप से रहे तो एक ही भव में बारह वर्ष तक वहाँ रहता है। कोई दृष्टान्त है ? तुम डॉक्टरने नहीं देखा ? पुस्तक में आता है परन्तु कुछ नहीं बोलते। दो-तीन वर्ष छह महीना अधिक वर्ष, दो वर्ष नहीं आता ? आता है। तीन वर्ष तो हमने देखा है, तीन वर्ष तो हमने देखा है। 'सीतापुर' में एक बाई थी, तीन वर्ष तक ऐसे का ऐसा बालक पेट में। शास्त्र तो बारह वर्ष कहते हैं। यह तो हमारे वहाँ तो दृष्टान्त था। यहाँ 'सीतापुर' है न ? 'वढवाण केम्प' के पास। बहुत वर्ष पहले गये थे। वह बहिन बिचारी व्याख्यान में आयी थी, फिर वह कहती - यह कैसे पाप का उदय होगा ? महाराज ! सवा तीन वर्ष हुए, सवा तीन वर्ष हुए ! माता के पेट में एक का एक (जीव) सवा तीन वर्ष (रहा।) शास्त्र तो कहता है कि एक बार एक भव की स्थिति पेट में बारह वर्ष की होती है; एक भव की और कायस्थति चौबीस वर्ष की होती है। वह का वही जीव मरकर वापस

वहाँ जाए और फिर पौधे ले तो बारह वर्ष रहे। पौधे अर्थात् प्रसव न हो, वह ऐसा का ऐसा रहे। माता के पेटमें ऐसा का ऐसा रहे, वह पौधा कहलाता है। नव महीने में जन्म होना तो सबको साधारण है। वह आता है, 'भगवती सूत्र' में आता है। उसमें, शास्त्र में आता है। इतने वर्षों में सुना नहीं ?

मुमुक्षु :-

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, बहुतों को होता है। सुना है। यह तो 'भगवती सूत्र' में (आता है।) पौधे अर्थात् ऐसा का ऐसा जीव वहाँ रहे। बारह वर्ष तक एक शरीर। मरे नहीं, बारह वर्ष में जन्म हो और कदाचित् बारह वर्ष में बाहर निकल जाए और वापस वह का वह जीव वहाँ जन्मे। फिर बारह वर्ष दूसरे। चौबीस वर्ष तक माता के पेट में एक कायस्थितिरूप रहे।

मुमुक्षु :- बढ़े नहीं ?

उत्तर :- नहीं, उतना ही बढ़े। बढ़े नहीं, उतना का उतना रहे। पेट कहाँ से फाटे ? तुम्हें डॉक्टर को भी पता नहीं ? आता है आता है, शास्त्र में आता है। हमने तो पहले 'भगवती' पढ़ा था। (संवत्) १९७१, पहले १९७१ में 'भगवती (सूत्र)' पढ़ा था। '७१ कितने वर्ष हुए ? है ? एक्यावन। तब से हमें तो पता है। हैं ? आता है, आता है। यहाँ तो श्वेताम्बर का एक-एक (शास्त्र) देखा है। सब जगह पौधा (होता है।) बहुत दृष्टान्त भी है। बारह वर्ष तक एक माता के पेट में रहे। तथा यह डॉक्टर कहता है, बढ़े नहीं ? बड़ा लड़का हो जाता है न ? नहीं, नहीं; उसमें सिकुड़कर रहता है। देखो ! यहाँ कहेंगे, देखो !

'**जननी उदर वस्यो नव मास, अंगसकुचतैं पाई त्रास।**' देखो ! यह लिखा है। यह दृष्टान्त दिया है न ? देखो ! यहाँ '**अंग सकुचतैं।**' सिकुड़कर ऐसा (पड़ा है।) माता के पेट में होता है न ? ऐसा ! आहा...हा...! (उल्टे सिर) इसमें तो बराबर नहीं किया। उल्टे सिर नव महीने। बारह-बारह वर्ष (तक रहे।) बारह-बारह वर्ष ! और एक साथ (लगातार उपजे तो) चौवीस वर्ष (रहता है।) एक माता के पेट में वह का वह जीव चौबीस वर्ष रहता है। इसलिए कितने ही देव तो... आगे देव में आयेगा। कितने ही देवों को, मिथ्यादृष्टि देव हैं, उस देव का आयुष्य जब लगभग (छह) महीने बाकी रहे, तब उसे ख्याल आता है कि माला मुरझाए, वस्त्र,

आभूषण मुरझाए... अरे...! मैं कहाँ जाऊँगा ? अर..र ! यह मनुष्य के पेट में नव महीने ! आहा...हा...! देव ! उसमें कितने ही वैमानिक देव होते हैं, हाँ ! यहाँ मिथ्यादृष्टि की बात है न ! सम्यग्दृष्टि की बात यहाँ नहीं है। हाँ वैमानिक की भी मिथ्यादृष्टि की बात लेते हैं। भाई ! नव अनुदिश और अनुत्तर की बात नहीं लेते। उसका कारण है कि वे सम्यग्दृष्टि है; यहाँ तो मिथ्यादृष्टि की बात है। मिथ्यादृष्टि तक की मर्यादा की बात लेती है न ! आगे नहीं लेती है - सम्यग्दृष्टि है, नव अनुत्तर, नव अनुदिश और पाँच वैमानिक। समझ में आया ? क्या कहलाता है वह ? अनुत्तर विमान। अनुदिश, अनुत्तर विमान। कुछ समझ में आया ?

उसमें रहे तो देव की ऐसी भी भावना कभी हो जाती है, मिथ्यादृष्टि है तो हाय...हाय..! रोता है, बहुत रोता है। अर...र...र...! यहाँ से जाऊँगा। इसकी अपेक्षा तो एकेन्द्रिय में उत्पत होऊँ तो अच्छा ! ऐसा विचार (करता है।) एकेन्द्रिय के विचारों में हिलोरे चढ़ें तो सीधा ऐकेन्द्रिय में (जाता है।) वैमानिकदेव, दूसरे देवलोक तक का मरकर एकेन्द्रिय में जाता है। ऐसे अनन्त अवतार ऐसे भाव से किये हैं। मिथ्यादर्शन के कारण, एक आत्मा का भान नहीं... समझ में आया ? मिथ्यादृष्टि सहित व्रतादि भी अनन्त बार किये, उसके फल में यह स्वर्ग आदि प्राप्त हुए और वहाँ से वापस मरकर एकेन्द्रिय में अवतरित हुआ, एकेन्द्रिय में। हाय... हाय..! सवा नौ महीने रहना; उसमें फिर किसी का पता चले कि बारह वर्ष तक अन्दर पैधे रहना... इससे तो एकेन्द्रिय में जाना ठीक। ऐकेन्द्रिय में अनन्तबार उत्पत हुआ। यहाँ कहाँ उसे कुछ पता नहीं होता। पता नहीं है, इसलिए वस्तु की सत्ता चली जाएगी।

कहते हैं - '**संकुचतैं...**' देखो ! अन्दर संकुचन किया है न ? पेट में नौ महिने तक '**शरीर को सिकोड़कर रहने से (त्रास)...**' (प्राप्त हुआ।) एक थोड़ा यहाँ शरीर दो घण्टे सिकोड़कर पड़ा रहे तो ए.... ऐसा अकड़ जाता है, ऐ... अकड़ जाता है। वह बालक नौ महीने तक पड़ा है।

अभी बालक का शरीर कोमल... कोमल... कोमल... कहों श्वास भी कहाँ से लेता होगा ? अन्दर ही अन्दर। ऐसे भव इसने अनन्तबार किये हैं, भाई ! एक आत्मा की विपरीत श्रद्धा (के कारण से) यह अन्तमें कहेंगे, हाँ ! कब आत्मा को पाये ? ऐसी श्रद्धा और ऐसे विपरीतज्ञान में मनुष्य होवे, तब फिर ऐ... यह नीच कहेंगे।

'**निकसत जे दुःख पाये घोर...**' उसमें से '**निकलते समय जो घोर दुःख पाये...**' आहा...हा...! देखो ! यही लिया है, हों ! माता को सुलाया है और लड़के का जन्म होता है। आहा...हा...! शास्त्र कहते हैं कि माता ने जन्म दिया, (उसकी) नज़र तो बाद में जाएगी परन्तु अनित्यता ने उसे गोद में ले लिया है। अनित्यता ने उसे गोद में ले लिया है। अब कब नष्ट हो जाएगा (इसका पता नहीं है।) समझ में आया ? अनित्य... अनित्य ! उसको नजर न जाए वहा मर भी जाए। यह लड़का जन्मा कैसा है (ऐसी) नजर जहाँ जाए वहाँ मर भी जाए। ऐसी स्थिति, यह स्थिति। ऐसे मनुष्य के गर्भ के दुःख, जन्म के दुःख, त्रास... त्रास... अनन्तबार हुई। मनुष्यपना प्राप्त हुआ, परन्तु धर्म प्राप्त करने की दरकार नहीं की। सम्यग्दर्शन, वीतराग परमेश्वरने कहा (वह प्राप्त नहीं हुआ।) जिस-जिस मण्डल में जन्मे, उससे अधिकपने जीना - ऐसे (भ्रम में) मर गया। दूसरे से हम कुछ बड़े होवें, ऊँचे होवें, यह होवें, अमुक होवे इसमें मर गया उसमें - जो मण्डल, जो समुदाय, जो रिस्तेदारी, जो सगे, जो परिवार, जो जाति, जो अमुक-अमुक इन सब में अपना जीवन कुछ-कुछ ठीक होवे, उसकी अपेक्षा अधिक (अच्छा होना चाहिए।), परन्तु आत्मा '**णाणसहावादियं मुणदि आदं**' आत्मा ज्ञानस्वभाव, राग से अधिक भित है ऐसे अधिकपने का भाव इसने नहीं किया। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- प्रगति होती है न ?

उत्तर :- प्रगति किसकी ? विपरीतता की ? भान नहीं है, इसे किसकी प्रगति करना है ? बाहर की प्रगति करने की की है। इससे बढ़ें, और इससे बढ़े अधिक (होवें) या पैसे में बढ़ें या प्रतिष्ठा में बढ़ें या ढीकाना (अमुक) में बढ़ें। लड़के ठीक हो तो फिर निर्विघ्न खायेंगे। हम पचास वर्ष के होंगे और चार लड़के हैं (फिर) यह निर्विघ्न... बाद के चालीस वर्ष पद्मासन से बैठकर खायेंगे। मूढ़जीव भी ऐसा जहाँ-तहाँ ऐसे फँस गया है। कहो, समझ में आया ?

अधिक... यह तो मस्तिष्क में क्या आया ? कि यह जहाँ-जहाँ अवतरित होता है - मनुष्य हुआ, वहाँ भी बाहर आकर दूसरे से अधिकपने किसी प्रकार शरीर की महत्ता में, वाणी की महत्ता में, पण्डिताई की महत्ता में, मूर्खाई के उसमें... इस (प्रकार) अनन्त... अनन्तबार (अभिमान किया)। मकान की महत्ता मैं, कपड़ों की महत्ता में, पहनावे की महत्ता में, कण्ठ की महत्ता में, गायन की महत्ता में, नृत्य की महत्ता... बहुत प्रकार हैं या नहीं ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- हो, होता है। उसमें खोटी बात क्या है ? उनसे यह अपना अधिकपना मानता है न ! आहा...हा...!

एक भगवान आत्मा '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' - अधिक अर्थात् पृथक्क उसकी बात है, हाँ ! भगवान आत्मा, पुण्य-पाप के विकल्प ओर शरीर से पृथक् है। अपने अनन्त अनन्त गुण से भारी थैली आत्मा है, गुण की थेली है। ऐसा भगवान आत्मा, जिसमें अनन्त खान पड़ी है। अरे...! एक रत्न की थैली हाथ आवे तो निकालने को उतावला होता है। है ? भगवान आत्मा एक समय में अनन्त आनन्द रत्न की थैली, बोरी है। बोरी... बोरी ! बोरी कहते हैं न ? क्या कहते हैं ? बोरा ! यह चावल इत्यादि भरते है न ? आहा...हा...!

कहते है, ऐसे आत्मा की इसने दरकार नहीं की। यह अन्तिम शब्द कहेंगे, हाँ ! अन्तिम कहते है न यह ? (सोलहवीं गाथा कहते है न ?) '**सम्यग्दर्शन बिन दुःख पाय।**' यह समझे न ? '**कैसे रूप लखे आपनो-**' आयेगा, देखो ! १४वीं (गाथा में) आयेगा। '**कैसे रूप लखे आपनो**' - देखो ! ऐसा कहते हैं। इसमें यह पंचायत में पड़ा है, उसमें आत्मा कौन है ? मेरा

(क्या) स्वरूप है ? निवृत्त कहाँ है यह, भाई ! सत्य है या नहीं ?

'**भयंकर दुःख प्राप्त किये। उन दुःखो का कहने से अन्त नहीं आ सकता।**' उसमें दुःख कहे थे न ! करोड़ों जीभों से भी तिर्यंच के दुःख कहने से पार नहीं आता। यहाँ तो कहते है कि मनुष्य के इस दुःख का भी पार नहीं आता, क्योंकि आत्मा के आनन्द स्वरूप से विपरीत दृष्टि के राग-द्वेष के भाव में फँस गया है, दब गया है, उसके दुःख की क्या बात कहना ?

'**भावार्थ :- मनुष्यगति मैं भी यह जीव नौ महीने तक माता के पेट में रहा; वहाँ शरीर को सिकोड़कर रहने से तीव्र वेदना सहन की...**' यह सिकोड़कर से बात की है, हों ! निमित्त से बात की है। मूल तो वहाँ मिथ्यात्व और कषाय का ज़ोर है और उसका इसे दुःख है, परन्तु उसके भित-भित निमित्त से उसका कथन किया है, वरना दुःख की व्याख्या तो यही है कि आत्मा के स्वरूप को भूलकर मिथ्यादृष्टि से राग और शरीर को एकरूप मानता है, बस ! यही महा दुःख है। कुछ समझ में आया ? अतीन्द्रिय आनन्द (स्वरूप) भगवान आत्मा की एकता में अतीन्द्रिय आनन्द है। उसे राग-द्वेष और विकार की एकता में अनन्त दुःख है। शास्त्रकार, निमित्त से कथन (करतें हैं) और अज्ञानी निमित्त से दुःख को देखता है। यह बिच्छु आवे, उसे देखता है कि यह दुःख आया, परन्तु उस समय कषाय होती है, उसका दुःख आया, परन्तु उससमय कषाय होती है, उसका दुःख है, उसे वह नहीं जानता; इसलिए आचार्यदेव ने निमित्त और संयोग से कथन [करके] जग को - संयोग से माननेवाले को इस प्रकार से समझाया है। समझ में आया ?

'**कभी-कभी तो माता के पेट से निकलते समय माता अथवा पुत्र का...**' देखो ! मरण होता है। काटकर निकालते हैं। निकालते हैं या नहीं ? किया है तुमने ? प्रसव न हो तो काटते हैं, टुकड़े करके निकालते है। फिर स्त्री (माँ) मर जाती है या वह (बालक) मर जाता है। यदि अन्दर रह जाए और अन्दर मर जाए तो स्त्री मर जाती है। झट निकालो। छुरी डालकर बालक के बारीक टूकड़े करते हैं। आहा...हा...! कहो ! एक महिलाको तो जितने प्रसव हों, वे टुकडे करके ही निकालने पड़ते। एक गाँव में महिला है। जितने बालक (गर्भ में) आवे उतने टुकडे करके निकाले। डॉक्टर कहे, अब बन्द रखो। यह जितने बालक हुए, सबको टूकड़े करके

ही निकालने पड़ते। ऐसा ही कोई पाप का उदय लेकर आये। बालक ऐसा ही (उदय) लेकर आये कि टुकड़े करके ही निकालने पड़ें। यह दशा ! अनन्त बार ऐसे टुकड़े होकर (बाहर) आया। फिर वहाँ से एकदम (मरकर) अन्यत्र वापिस जाए। ऐसे अवतार ! भगवान आत्मा के स्वरूप की कींमत (दरकार) नहीं की; अपने आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्य की महत्ता की दरकार नहीं आयी और मिथ्यात्वभाव में परवस्तु की दरकार और महत्ता और महिमा आयी, यह उसके फल में (इस प्रकार) भटका - ऐसा कहते हैं। कुछ समझ में आया ?

मनुष्यगति में बाल, युवा और वृद्धावस्था के दुःख

बालपनेमें ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी-रत रह्यो;
अर्धमृतकसम बूढापनो, कैसे रूपलखै आपनो।।१४।।

अन्वयार्थ :- [मनुष्यगति में जीव] (बालपने में) बचपन में (ज्ञान) ज्ञान (न लह्यो) प्राप्त नहीं कर सका [और] (तरुण समय) युवावस्था में (तरुणी-रत) युवतीस्त्री में लीन (रह्यो) रहा, [बूढापनो] वृद्धावस्था (अर्धमृतकसम) अधमरा जैसा [रहा, ऐसी दशामें] (कैसे) किस प्रकार [जीव] (आपनो) अपना (रूप) स्वरूप (लखै) देखे-विचारे ?

भावार्थ :- मनुष्यगति में भी यह जीव बाल्यावस्था में विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाया, यौवनावस्था में ज्ञान तो प्राप्त किया किन्तु स्त्री के मोह (विषय-भोग) में भूला रहा और वृद्धावस्था में इन्द्रियों की शक्ति कम हो गई अथवा मरणपर्यंत पहुँचे ऐसा कोई रोग लग गया कि जिससे अधमरा जैसा पड़ा रहा। इस प्रकार यह जीव तीनों अवस्थाओं में आत्मस्वरूप का दर्शन (पहिचान) न कर सका।।१४।।

चौदह (गाथा)। '**मनुष्यगति में बाल...**' अवस्था '**युवा, वृद्धावस्था के दुःख।**'

बालपनेमें ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी-रत रह्यो;
अर्धमृतकसम बूढापनो, कैसे रूपलखै आपनो।।१४।।

आहा...हा...! देखो ! यहाँ मनुष्य में यह लिया, भाई ! उसमें अभी दुःख का ही वर्णन किया था। यहाँ कहते हैं...

मुमुक्षु :-

उत्तर :-- हाँ, इसलिए लिया। वहाँ भी वह मनुष्य है न ? '**(मनुष्यगति में जीव) बालपने में...**' 'बालपन खेल में खोया, जवानी में स्त्री में मोह्या, बूढ़ापन देखकर रोया।' हमारे वहाँ 'पालेज' में छोटी उम्र में (देखा था)। मुसलमानों का रोजा का दिन आता है न ? यह क्या कहते हैं ? वह रात्रि में फकीर आता, निकलता, वह ऐसा बोलता। 'बालपन खेल में खोया, जवानी में स्त्री में मोह्या, बूढ़ापन देखकर रोया।' बूढ़ापा (आया), हाय... हाय... ! अब ?

'**बचपन में ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका...**' विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका।शब्दज्ञान अर्थात् उसका क्षयोपशम हो, परन्तु सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका, इसलिए यह विद्या भी ठीक पढ़ा नहीं। उसमें और उसमें खेल में काल गँवाया। बालपने में खेलमें काल गँवाया, लो ! देखो न ! यह गेंद खेलना और यह खेलना और वह खेलना और धूल खेलना... कितना काल जाता है ? एक-एक समय ऐसा- चिन्तामणि रत्न जैसा मिला है, मनुष्य की देह का एक समय, चिन्तामणि रत्न दे तो भी नहीं मिलता - ऐसा मिला; खेलकूद, नाच, हा...हो...! वह गेंद क्या कहलाता है ? फूटबोल ! वह कितना ऊँचा उछला ? कितना उछला ? परन्तु यह क्या है ? तू अन्दर में उछल गया। तेरा समय ऐसा चला जाता है। आहा...हा...! अनन्तकाल में मुश्किल से ... और बाहर आया और उसमें यह मनुष्यपना क्या हुआ इसका तुझे पता नहीं पड़ता।

कहते हैं, और '**युवावस्था में युवती स्त्री में लीन...**' '**तरुणीरत**' - ऐसा कहा है न ? तरुणी अर्थात् स्त्री, युवा स्त्री। स्वयं युवा और युवा स्त्री; हो गया, दोनो आमने-सामने देखा करते हैं, और पूरे दिन एक ही बात। समझ में आया ? एक (व्यक्ति) का विवाह महा कठिनता से हुआ तो वह घर ही बैठा रहता, उसके सामने ही देखा करता। वह सवेरे कलशा करे। क्या कहलाता है वह ? सवेरे कलशा करते हैं न ? रात्रि के बासी हों, उन्हें साफ करते हैं। वे लकड़ी के क्या कहलाते हैं वे ? ब्रश डालकर। तुम्हें ब्रश इतना झट कहना भी नहीं आता ? यहाँ हम तो भूल गये होते हैं, क्यों ? वह ब्रश डालकर ऐसे-ऐसे घिसने बैठे न ? वह पति सामने देखा करे। ऐसे जाए

तो सामने देखा करे। पूरे दिन सामने देखे, मानों महा कठिनतासे रत्न मिला हो। कौन जाने क्या होगा ? चली जाएगी या क्या होगा ? आहा...हा...! ऐसे पापी !

एक व्यक्ति ने घरघरणुं किया। समझ में आता है ? बड़ी उम्र में विवाह किया। बहु मर गयी, तो विषय के लिए बिलखन लगा वह स्त्री कहे - मैं चली नहीं जाऊँगी, हमने विवाह किया है। समझ में आया ? एक-एक रात्रि में भोग में बारह बारह बार ! बारह-बारह बार (भोग करे)। एकदम क्षय हुआ। हमारे तो बहुत दृष्टान्त आये हो न ? बहुत नजर में पड़े हों या नहीं ? आहा...हा...! अधिक दृष्टान्त उत्कृष्ट देने को हो न ! साधारण तो... समझे हो ? आहा...हा...! मर गया। कहते हैं, तरणी रत। तरुणीरत कहा न ? स्त्री में रत हो गया। मानो कि .... आहा...हा...! ऐसा मिलेगा या नहीं ? तल्लीन... तल्लीन... तल्लीन... एक-एक अवयव (देखा करता है।) क्या है ? वह तो हाड-माँस के पिण्ड हैं और उनमें सुख है ? तेरी राग की एकाग्रता है, उसे तू मानता है, वहाँ कहाँ धूल में सुख था ?

'**युवावस्था में... (तरुण समय)**' समय है न ? अर्थात् युवावस्था के काल में - ऐसा लेना। लो न ! तरुणसमय - युवावस्था के काल में - युवावस्था के समय, '**युवा स्त्री में लीन रहा.. (बूँढ़ापनो) वृद्धावस्था**' जहाँ आयी, '**अधमरा जैसा रहा...**' लो ! आहा...हा...! समझ में आया ? इतना विषय सेवन करता है कि वीर्य के बदले खून निकलता है। इतना विषय सेवन करता है। इतना गृद्ध हो जाता है। आत्मा क्या है ? कहाँ है ? कौन है ? - यह समझ ने की दरकार नहीं होती। यह समझ में आता है ? ऐसे जीव सुने है, सब देखे हुए है; सब नाम-ठाम का पता है। आहा...हा...! अन्त में खून गिरता है। शरीर में वीर्य नहीं रहता, (इसलिए) खून गिरता है, तो भी नहीं छोड़ता। क्षय होकर मर जाता है।

कहते हैं, युवावस्था में ऐसी स्थिति को प्राप्त हुआ। बूढ़ापा अर्द्धमृतक जैसा। देखो ! इसमें

दृष्टान्त दिया है न ? देखो ! इसमें दिया है, हाँ ! देखो ! यह बालपन - एक पैर ऊँचा रखा है। खेलता है, खेलता है। है ? भाई ! है या नहीं इसमें ? क्या किया हैं ? एक लड़का खड़ा (रखा है, उसने) ऐसे पैर ऊँचा रखा है। खेलता है। समझे न ? लो ! (दूसरे चित्र में) युवा स्त्री ने हाथ पकड़ा है, उसने हाथ पकड़ा है। देखो ! ऐसे खेलता है। (दूसरे में) स्त्री ने हाथ पकड़ा और (तीसरे में) वृद्धावस्था में लकड़ी पकड़कर ऐसे... ऐसे (चलता है।)... शरीर, यह दशा ! फिर मज़ाक करते हैं, लड़के मजाक करते हैं। बापा ! क्या खोजते हो ? ऐ... युवापन खोजते है, बापा ? बूढ़ी थी न बिचारे ! वृद्धा होती है न ? बिचारे ऐसे (टेडे) हो गये हों, ऐ...से...चलते-चलते (जाते हों।) उसमें बीस वर्ष का युवा लड़का (मिले), बड़ा शरीर लट्ठा जैसा, अंग्रेज जैसा (होवे), (उससे पूछो कि) माँ ! क्या खोजती हो ? (तो कहे) बापू ! जवानी खोजते है, भाई ! हमारे तेरे जैसी जवानी थी, हाँ ! परन्तु वह जवानी चली गई, हाँ ! तू वह नहीं करना। हों ! अब वह युवान मज़ाक करता है। हें ? आहा..हा..! उभरती जवानी हो, मज़ाक करे वह वृद्ध बिचारी ऐसे लार गिरती हो, लकड़ी ऐसे... ऐसे रखे, वरना तो ऐसे गिर जाए। इस तरह लकड़ी से कठिनता से चलते हों, बापू ! ऐसे अवतार अनन्तबार (किये), अनन्तबार किये हैं। फिर यह किसी की बात नहीं चलती। आहा...हा...! शरीर जरा वैसा मिले, वहाँ ऐसा हो जाता है कि हम कायम रहनेवाले हैं।

कहेत हैं - '**(ऐसी दशा में) (कैसे) (जीव) अपना स्वरूप (लिखे)...**' देखो ! आहा...हा...! '**कैसे रूप लखे आपनो।**' भाई ! यहाँ से शुरु किया है। देखो ! इसमें सम्यग्दर्शन की व्याख्या में यहाँ से शुरुकिया है - ऐसा मेरा कहना है। ऐसा नहीं कि वह शुभभाव कैसे करे ओर अमुक कैसे करे ? यहाँ से शुरु किया (है।) देखो, यहाँ पर ग्रन्थकार 'दौलतरामजी' ऐसा कहते हैं कि मनुष्यपने में, बालपन खेलमें खोया, (जवानी में) तरुणी में मोह्या और वृद्धावस्था में (अर्ध मृतक होकर रहा।) इसमें अपना रूप कब लखे ? अपना स्वरूप जानने का नाम ही सम्यग्दर्शन है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? देखो ! स्वयं यहाँ लिखते हैं, भाई ! '**कैसे रूप...**' आया या नहीं ? '**कैसे रूप लखे आपनो।**' ऐसा कहा है। स्वरूप कौन है ? राग कौन है ? शुभराग कौन है ? ऐसा मानो शुभराग किया नहीं ? समझ में आया ? अनन्तभव में शुभराग नहीं किया ? वह तो यहाँ से लेंगे। मनुष्य मरकर स्वर्ग में जाएगा, वहाँ से लेंगे। मनुष्य में से देव लेंगे। शुभभाव तो अनन्तबार किया है, परंतु कहते हैं कि ऐसा मनुष्यपना प्राप्त करके, आत्मा स्वरूपसे भगवान यह अखण्डानन्द शुद्ध चिदानन्द वीतरागमूर्ति आत्मा है, उसके स्वरूप को किस प्रकार लखे ? लखे अर्थात् जाने। ऐसी स्थिति में बालपना ऐसा गया, तरुणी में ऐसा गया, वृद्धावस्था में ऐसा गया। पैसा मिला, वहाँ पैसे में गया, नहीं होवे, वहाँ निर्धनता में रोया। ऐसा ही ऐसे इसने अनन्तकाल होली सुलगाई है। समझ में आया ?

युवावस्था होवे और उसमें पाँच-पच्चीस लाख मिले होवें तो 'मैं चोड़ा और गली सकड़ी' ! ओ...हो...हो...! साथवाले को दबावे। 'खाली करो, आठ लड़के हैं, हमारे मकान चाहिए।' (तब कहे) भाई साहब ! परन्तु हमारे मकान की कींमत मुताबिक कुछ दोगे ? (तब वह कहे) खाली करना है या नहीं ? तुम्हारी सिफारिश नहीं पहुँचेगी, कोर्ट में हमारी सिफारिश पहुँचेगी। ठीक, बापू ! भाई ! आहा...हा...! परन्तु तुझे यह क्या करना है ? ऐसे झगड़े ही खड़े करना है या आत्मा क्या है - इसका कुछ जानने का प्रयत्न करना है ? ऐसी स्थिति में कहते हैं कैसे किस प्रकार यह '**(आपनो) अपना स्वरूप (लखैं)...**' आहा...हा...! अद्भुत व्याख्या की है यहाँ। चौदहवीं (गाथा में) की है। लो, भाई ! है ?

मुमुक्षु :-

उत्तर :- नहीं, नहीं; इस प्रकार पड़ा है, उसमें कहाँ से करे ? - ऐसा (कहते) हैं। उलझ गया। बालकपने में, जवानीमें, लक्ष्मी में, मोह में, परिवार में, कबीले में, देश में, व्यापार में, बड़े करने में (उलझ गया।) समय मिला, वह समय वहाँ गँवाया। अब, इसमें आत्मा का रूप-स्वरूप कब जानने चाहे। ऐसा कहते हैं। आत्मा कौन है ? उसकी क्या चीज है ? उसमें क्या वस्तु है और ये विकारादि क्या मेरे से प्रत्यक्ष हैं ? यह जानने की दरकार (नहीं की।) '**कैसे रूप लखे आपनो।**' अपनी जाति को जानना - यह इसमें कैसे मिले ? यह बाहर में रचा-पचा है उसमें। कहो, ठीक है या नहीं ? आहा...हा...! निर्धनपना होवे, तब ऐसा मानता है कि भई ! हमारे पास साधन (नहीं है, इसलिए) कमाने के (लिए) समय चाहिए। पैसे मिले तब कहता है बापा ! पैसेवाले को कैसे निवृत्ति मिले - यह तुम्हें पता नहीं पड़ेगा। ऐसे ही ऐसे अभिमानी ! एक व्यक्ति कहता था, कहा न वह ? उसदिन तो साठ लाख थे, (वह कहे) महाराज ! वह तो हमारे जैसा समय होवे तो पता पड़े। अरे...! परन्तु तुम मर गये इसमे ? क्या हो गया अब तेरे पास साठ लाख और दो करोड़ और पाँच करोड़ धूल में ? मरते समय निवृत्ति मिलेगी और टांगा पड़े (रहेंगे) ऐ... ऐसा करके। उसमें और उसमें (समय जाता है। या मिल या जीन और या प्रेस का संचा। बाहर में उसमें फँस गया है।

कहते हैं, अरे...! ऐसा मनुष्यपना पाया, वहाँ इन्होंने लिखा, देखो ! मनुष्यपने में, हाँ ! आहा...हा...! अन्य की अपेक्षा हामारी दुकान अच्छी चलती है, दूसरे की अपेक्षा हम ऊँचे हैं, हमने पैसा, पूँजी बढ़ाई है। हमारे लड़के आज्ञाकारी, ऐसे दूसरों के नहीं; हमारे जैसा साधन (किसी को नहीं), सब सही। अभी हमारे बहुत अच्छा है। किसका ? धूल का। भाई ! आहा...हा...! '**कैसे रूप लखे आपनो।**' वाह...! मनुष्यपना पाकर यहाँ उलझ गया। भाई ! यह फिर मस्तिष्क में आया। आहा...हा...!

'**भावार्थ :- मनुष्यगति में भी यह जीव बाल्यावस्था में विशेषज्ञान प्राप्त नहीं कर पाया...**' ऐसा। विद्या-विद्या नहीं सीखी, विशेष ज्ञान नहीं। मूढ़ जैसा मूर्ख रहा। कहा नहीं था एक लड़के को ? तीस वर्ष की उम्र, दश वर्ष पढ़ाया तो सौ की गिनती सीखा था। सौ तक गिनती। पाठशाला में दस वर्ष पढ़ाया तो सौ तक गिनती सीखा। वह भी यह दशाश्रीमाली बनिया और तू

यह ? (संवत्) १९७० के पोष महीने की बात है। कितने वर्ष हुए ? बावन हुए। अमरेली के उपाश्रय में उतरे थे दईडा का लड़का था। दईडा...दईडा है। पास का गाँव है। वह लड़का मजदूरी करता था। कोई लड़का था, छोटा था। उस दिन की ५२ वर्ष पहले की बात है। .... परन्तु तू यह क्या करता है ? यह तीन आने का .... तीन आना, ढ़ाई आना होंगे, उस दिन तो कौन जाने (कितने होंगे ?) ऐसे सिर पर (उठाये)... चोरणी पहिनकर। .. तू दशाश्रीमाली बनिया है। तो कहे, हाँ; तो यह क्या ? मेरे पिता ने दश वर्ष तक पाठशाला में पढ़ाया, सौ तक गिनती आती है, कहा। आहा...हा...! ऐसा मूढ़ भी अनन्तबार हुआ। यह कही इसके लिए एक की बात नहीं है, ऐसे अनन्त-अनन्त मनुष्य के अवतार किये। समय आया, तब भूल गया। उसे बुद्धि नहीं, हमारे तो बुद्धि है, हम तो बुद्धिवाले हैं। किसकी बुद्धि है ? भटकने की ? यह कमाने की और यह अमुक व्यवस्था करने की, हमारे हाथ में व्यवस्था आवे, हमारे हाथ में डौर आवे तो दुकान सही चले; उसके हाथ में आवे तो वह सब डूबो देगा...।

मुमुक्षु :- होता है।

उत्तर :- होवे, धूल में भी (नहीं) होता, वह तो पुण्य के कारण होता है। भाई ! क्या होगा ? हमारे हाथ में दुकान की डोर लें तो ठीक प्रकार से चले, उसमें हमारी आमदनी कम नहीं हो, बढ़ती ही जाए। धूल में बढ़ती जाती होगी तेरे कारण। वह तो पूर्व का पुण्य होवे तो बढ़ती है, उसमें तूने क्या किया ? व्यर्थ ही ऐसे ही ऐसे अभिमान में मर गया। आत्मा क्या है ? - (यह) पहिचानने का अवसर नहीं लेता।

'**यौवनवस्था में ज्ञान तो प्राप्त किया, किन्तु स्त्री के मोह (विषय-भोग) में भूला रहा...**' लो ! ऐसा लिया। ज्ञान किया, पढ़ा, विद्या (प्राप्त की), भोग में भूल गया (कि) इस समय में मुझे यह आत्मा की पहिचान, ध्यान, ज्ञान करना है। '**वृद्धावस्था में इन्द्रियों की शक्ति कम हो गयी...**' शिथिल हो गयी। भई ! सुनाई नहीं देता, कान बहेरे हो गये। आँख से नहीं दिखता, मोतिया आ गया। है या नहीं ? मोतिया आया, कुछ नहीं दिखता, बहुत पढ़ने का मन हो जाता है, परन्तु सही समय में पढ़ा नहीं हाँ ! और अभी पढ़ने का मन हो तब आँख नहीं मिलती। ओ...य...! भाई ! तुम्हारे तो आँखे हैं और सोते सोते पढ़ना हो तो पढ़ सको ऐसा है।

परन्तु फुरसत कब है ?

मुमुक्षु :- उसे क्या काम है ?

उत्तर :- यह चिन्ता करने का। क्यों ? भाई ! हम इसकी सही बात करते हैं या नहीं ? चिन्ता करने का। लड़का क्या करता होगा ? और वह... क्या नाम है दूसरे का ? वह क्या करता होगा ? (इस भाई के) लड़के कितने बढ़ गये और कितने किये ? यह चिन्ता... चिन्ता... चिन्ता... चिन्ता में होली (सुलगती है।)

कहते है, वह भूल गया। 'विषय' शब्द से तो पाँचों इन्द्रियों के विषय हैं, हाँ ! स्त्रीका मोह (है) परन्तु पाँचों इन्द्रियों के विषयों में (भूल गया)। प्रतिष्ठा प्राप्त करना, कीर्ति प्राप्त करना, रूप देखना... एसा का ऐसा गया। '**वृद्धावस्था में इन्द्रियों की शक्ति कम हो गयी अथवा मरणपर्यंत पहुँचे - ऐसा कोई रोग लग गया...**' वहाँ रोग लग गया। ऐसा कोई टी.बी. हो गया। हाय... हाय...! साठ वर्ष बाद... साठ वर्ष में सत्तर वर्ष में अभी टी.बी. होती है। लो ! है ? उस भाई को टी.बी. नहीं थी ? (उस भाई को) टी.बी. थी, पचहत्तर वर्ष में टी.बी. (हुई)। वह तो अब डॉक्टर इनकार करते हैं, अब कुछ लेना नहीं, हाँ ! क्या खाना ? मक्खन... मक्खन (खाओ) भाई साहब ! हम गरीब आदमी कहाँ से (लायें) ? पैसे वाले तो खाये। खायें तो उसमें वही की वही उसकी लोलुपता होती है, कब ठीक होगें ? कब ठीक होंगे ? ठीक होकर फिर कोई धर्म करना है - ऐसा नहीं है। ठीक होकर वापस दुकान पर जाकर जमकर बैठना है। है ?

कहते हैं, देखो न ! अर्धमृतक हुआ, अर्धमृतक। है ? अर्धमुरदे जैसा; ऐसा कहते हैं। उस हालत में '**रोग हो गया, जिससे अधमरा जैसा पड़ा रहा।**' पलंग में पड़ा रहा। कपड़ा ढाँककर पड़ा हो। एक वृद्ध मनुष्य था। दो-दो वर्ष, तीन-तीन वर्ष (पलंग में), दूसरा कोई रोग नहीं, हां ! परन्तु फिर अवस्था के कारण चल नहीं सके, फिर चद्दर ढ़ँककर पड़ा हो। खाने का समय होवे तब दे, परन्तु चद्दर ढँककर पड़ा रहे और फिर किसी समय चिड़चिड़ाये।अपेक्षित न मिला होवे तो ऐसा चिड़चिड़ाये, ऐसा चिड़चिड़ाये... आहा...! फिर अन्दर लड़के भी मारे। हमने देखा है, हाँ ! चद्दर ढँका रखकर मारे। बोलना नहीं... वह वृद्ध गाली दे... ऐसी कठोर गाली दे।

... उसके लड़के के लड़के घर में हो और गाली दे... लड़का बाप को ... परन्तु क्या करे ? भाई ! आहा...हा...! अरे...! ऐसा का ऐसा इसका समय गया, फिर उसे आर्तध्यान (होता है।) अर..र..! हमने तुम्हारा पालन किया, पोषण किया, बड़ा किया, हमने ऐसा किया-वैसा किया और अब तुम ऐसा (करते हो) ? परन्तु तू इतनी गालियाँ (देता है), माँ-बहिन को गालिया (देता है)। ऐसा गालियाँ (दे), हाँ ! सुनी नही जाए और बाजार में दुकान, इसलिए बाहर लोग निकले, (वे) सुने, इतनी शर्म लगे; लड़को के लड़के घर में, उसे अन्दर से मारे। कहो, '**अर्धमृतक जैसा पड़ा रहा।**'

'**ऐसी दशा में प्राणी तीनों अवस्थाओं में...**' देखो ! अब कहते हैं। बालकपने में आत्मा का ज्ञान किस प्रकार करे ? जवानी में (स्त्री में मोह्या), वृद्धावस्था में (अर्धमृतक हुआ।) (उसमें) '**आत्मास्वरूप का दर्शन (पहिचान) नहीं कर सका।**' लो ! आत्मा का क्या स्वरूप है ? भगवान आत्मा ? उसकी महत्ता इसने नहीं की; दूसरे की कीमत में मर गया, परन्तु उसकी (आत्मा की) कीमत (महत्ता) नहीं की।

देवगति में भवनत्रिक का दुःख

कभी अकामनिर्जरा करै, भवनत्रिकमें सुरतन धरै;
विषय-चाह दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो।।१५।।

अन्वयार्थ :- [इस जीवने] (कभी) कभी (अकामनिर्जरा) अकामनिर्जरा (करै) की [तो मरनेके पश्चात्] (भवनत्रिकमें) भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी में (सुरतन) देवपर्याय (धरै) धारण की, [परन्तु वहाँ भी] (विषय-चाह) पाँच इन्द्रियों के विषयों की इच्छा रूपी (दावानल) भयंकर अग्नि में (दह्यो) जलता रहा [और] (मरत) मरतेसमय (विलाप करत) रो-रोकर (दुख) दुःख (सह्यो) सहन किया।

भावार्थ :- जब कभी इस जीवने अकाम निर्जरा की तब मरकर उस निर्जराके प्रभावसे (भवनत्रिक) भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी देवोंमें से किसी एकका शरीर

धारण किया। वहाँ भी अन्य देवोंका वैभव देखकर पचेन्द्रियों के विषयों की इच्छारूपी अग्निमें जलता रहा। फिर मदारमाला को मुरझाते देखकर तथा शरीर और आभूषणों की कान्ति क्षीण होते देखकर अपना मृत्युकाल निकट है ऐसा अवधिज्ञान द्वारा जानकर 'हाय ! अब यह भोग मुझे भोगने को नहीं मिलेंगे !' ऐसे विचार से रो-रोकर अनेक दुःख सहन किये।।१५।।

अकाम निर्जरा यह सिद्ध करती है कि कर्मके उदयानुसार ही जीव विकार नहीं करता, किन्तु चाहे जैसा कर्मोदय होने पर भी जीव स्वयं पुरुषार्थ कर सकता है।

'**देवगति में भवनत्रिका का दुःख।**' लो ! मनुष्य के दुःखों का इतना साधारण वर्णन किया, वरना दुःख तो बहुत प्रकार का है न ? मनुष्य में बहुत प्रकार के (दुःख हैं।) छेदाजाए-भेदाजाए, अँगुलिया टूटे, कुष्ट होवे। देखो न ! बहुत रोग होते हैं न ? पीड़ा। कण्ठ में वह होता है। क्या कहलाता है ? केन्सर। है ? आहा...हा...! केन्सर का पता पडे, पेट में भूख का पार न हों और यहाँ केन्सर, पानी उतरे नहीं। अभी कोई कहता ता, पानी नहीं उतरता। यहाँ पर पानी जाने से दुःखता है। पेट में भूख का पार नहीं होता, यहाँ पानी डाले तो (जले)। पानी ठण्डा हो, कैसा भी हो, परन्तु जलन होती है। वह ... हो गया हो न ? .. बापा ! वह अवस्था गयी। आत्मा कौन है ? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ भगवान, इस आत्मा के स्वरूप की महिमा जिनकी वाणी में पूर्ण नहीं आती, ऐसा आत्मा कौन वह यह अन्दर है ? ओ..हो...हो...! उसके स्वरूप को जानने, पहिचानने की दरकार नहीं की। उसमें क्या करे ? कहते हैं, वहाँ फँस गया भाई ! पुस्तक छपावे, उसमें रोके, फिर छपाया होवे, उसे समाप्त होवे वहाँ तक रोके, फिर समाप्त होने पर उसकी राशि संग्रह करने में रुके, भाईयों को कोई विवाद उठे, उसमें रुके... रुकने के साधन कितने ? भाई ! यहाँ तो वह मनुष्य का पूरा करते हैं न, इसलिए जरा लिया। मनुष्य में बहुत बहुत दुःख (भोगे।)

ओ...हो...! एक स्त्री तो उस दिन (संवत्) १९८२ के चातुर्मास में पोरबन्दर में थी। हमारा चातुर्मास था न ? एक बाई थी, उस ओर थी, मन्दिरमार्ग की ओर। साड़े तीन वर्ष से ऐसी उल्टी

पड़ी रहती थी, बहुत दुःख ! चिल्लाये ! महाराज ! दुःख नहीं सहा जाता। ऐसे के ऐसे उल्टे सिर, हाँ ! कुछ रूचे ऐसा होगा ? साड़े तीन वर्ष से !

'जामनगर' में ऐक साधु था, मन्दिर मार्गीसाधु। हाथ में कीड़े पड़ गये थे। मन्दिरमार्गी साधु था, गये थे, उसके पास गये थे। बिचारा (कहता), महाराज ! साठ वर्ष की बड़ी उम्र थी, सुन्दर शरीर था, परन्तु कौन देखे वहाँ ? फिर करे (कौन) ? एक व्यक्ति रख दिया था। शिष्य था, परन्तु क्या करे ? अब, सहन नहीं होता, इसलिए क्या करना ? कहा। उसमें कहीं मर जाने से छुटकारा है ? वह तो आयु पूर्ण होगी, तब होगा। शरीर में कीड़े पड़े, हाँ ! मन्दिरमार्गी साधु, कीड़े पड़े। कारण कि बहुत घिसता था न ! कीड़े पड़े। सुन्दर शरीर था। उसमें मर गया। ऐसे-ऐसे मनुष्य के अनन्त अवतार किये। समझ में आया ? एक की बात नहीं। ऐसे-ऐसे जितने जितने दृष्टान्त दें ऐसे अनन्तबार मनुष्यपने में इसने अवतार धारण किया है।

अब, कहते हैं, वहाँ से कदाचित् (बाहर निकलता है।)

'**देवगति में भवनत्रिक का दुःख**' आया, हाँ ! पन्द्रहवीं (गाथा)

कभी अकामनिर्जरा करै, भवनत्रिकमें सुरतन धरै;
विषय-चाह दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो।।१५।।

यहाँ सब दिया है, हाँ ! चित्र दिया है। भवनपत्ति में जन्में और सब है न ? '**(इस जीवने) कभी अकामनिर्जरा की...**' अकाम निर्जरा माने, समझ में आता है ? इच्छा बिना, खाने-पीने का भाव है, तथापि मिलता नहीं उसमें कोई राग की मन्दता करे, यह स्त्री विधवा हो और भाव होने पर भी मिले नहीं और उसमें फिर राग की मन्दता करे तो अकामनिर्जरा से भवनपति, व्यन्तरदेव

होवे। ऐसी अकामनिर्जरा अनन्तबार की है। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष - तीनों के कारण अलग-अलग हैं, परन्तु होते सब मिथ्या दृष्टि हैं। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष में जन्म लेने वाले सब मिथ्यादृष्टि होते हैं, सम्यग्दृष्टि वहाँ जन्म नहीं लेते हैं। (मिथ्यादृष्टि ही) ऐसे भवनत्रिक में (जन्म लेते हैं।) भवनत्रिक अर्थात् भवनपति, व्यन्तर और ज्योतिष।

'**कभी अकामनिर्जरा करके भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी में (सुर-तन)...**' सुर अर्थात् देव का शरीर धारण किया, '**(परन्तु वहाँ भी) (विषय चाह) पाँचो इन्द्रियो के विषयों की इच्छारूप...**' विषय की चाह। देवियों के विषय उनमें व्यवन्तर हुआ तो कोतूहल किया। कोतूहल किया, किसी की देहमें प्रवेश करके (देह में प्रवेश नहीं करते हैं, मात्र लोक कहावत है।) धुनाते है न ? धुने-धुनावे ऐसे कौतूहल करके जिन्दगी व्यतीत की है। कुमार कहलाते हैं न ? उन्हें कुमार कहते हैं, समझ में आया ? जवान लड़के जैसे खेलकूद में समय वितातेहैं, ऐसे ये असुरकुमार आदि देव, व्यन्तर देव क्रीड़ा में काल गँवाते हैं। विषय की चाह, क्रीड़ा में काल गँवाते हैं। मरकर फिर जाते हैं, पशु आदि में चले जाते हैं। समझ में आया ? ऐसे अनन्तबार भवनपति (के अवतार किये।) उनकी एक सागर की स्थिति है। दश हजार (वर्ष की जघन्य) आयु है। दश हजार वर्ष की आयु में अनन्तबार जन्मा; फिर एक समय अधिक की आयु अधिक (प्राप्त करके) उसमें जन्मा। भवनपति, व्यन्तर प्रत्येक में (इस प्रकार जन्मा)। दश हज़ार वर्ष की आयु में भवनपति में अनन्तबार जन्मा; एक समय अधिक आयुष्य में (अनन्तबार जन्मा, दो समय अधिक में (अनन्तबार जन्मा)। ऐसे अकाल निर्जरा के फलरूप में ऐसे अवतार किये। ऐसे व्यन्तर, भूत होते हैं न ? समझ में आया ?

नीचे नरक के भाग हैं। पहले नरक में दश जगह भवनपति हैं। समझ में आया ? असुरकुमार, नागकुमार आदि। नीचे नरक और व्यन्तर ऊपर के भाग में हैं। उनमें अनन्त बार एक-एकपने जन्मा है। व्यन्तर देव दुःखी हैं - ऐसा नहीं है, हाँ ! वहाँ बाहर का बड़ा साधन है, परन्तु कौतूहल करके हाथमश्करी करने का धन्धा (किया करते हैं।) अभी वे लोग नहीं होते ? हाथ करनेवाले नहीं (होते), क्या कहलाते हैं ? मश्करा। 'राजकोट' का एक ब्राह्मण आया ? बस ! वाक्य-वाक्य में उसकी मश्करी ही होती है। हास्यवृत्ति, हास्य ही करे। अभी एक आया

था, वह भी हास्य ही करता था। यही सीखा हो। बड़े राजा-महाराजा की सभा इकट्ठी करके ऐसे शब्द बोले, स्वयं हँसे नहीं, भाषा ऐसी बोले कि हँसी ही आवे। ऐसे मरकर व्यन्तर हुए हों, कोई शुभभाव हो और अकामनिर्जरा से (वहाँ जाकर) वहाँ भी वापस ऐसे ही ऐसे ढोल बजाये। समझ में आया ? व्यन्तर में ऐसा ही ऐसा किया करे। आहा...हा...!

नपुसंक होते हैं। ये देखो न, नहीं होते ? मुसलमान और सब नपुसंक ढोलक बजाते हैं। पैसे माँगने के लिए बजाते है न ? वह इसमें है न ? कहीं आयेगा, इसमें आयेगा। स्त्री, पुरुष और नपुसंक आता है न ? आता है, आता है। इसमें चित्र आता है। वह नपुसंक बराबर ठीक किया है। हमारे यहाँ 'पालेज' में बहुत मुसलमान आते थे। मुसलमान ने लेंहगा पहना हो, फिर ऐसा बोले, खराब भी बोले पैसा लेने के लिए। छ आना, आठ आना ले, पैसा-वैसा न ले।

कहते है, ऐसे देव...यहाँ भी ऐसी अकामनिर्जरा में कोई राग मन्द हो गया हो और उसमें अवतरित होता है। वहाँ भी वापिस वही की वही कौतूहल वृत्ति करता है। वहाँ विषय-चाह की दाह में जला-जला करता है। समझ में आया ? '**(दावानल) भयंकर अग्नि में जलता रहा...**' कौनसी अग्नि ? विषय की चाह, चाहना, चाहना। '**मरते समय रो-रोकर दुःख सहन किया।**' वह भवनपति, व्यन्तर मरते समय हाय... हाय.. कहाँ जाऊँगा ? रोता है। कुछ सुख नहीं होता, अपमान बहुत होता है। देव में भी रोता है, चिल्लाकर रोता है, वहाँ अरे...रे...! अब मेरा कोई मालिक नहीं है; हमने इन देवों के साथ, इन्द्र के साथ बहुत काम किया है, मरने का समय आया, कोई हमारा सहायक नहीं है। रोता है, फिर रोता है। हाय... हाय.. कहाँ जाऊँगा ? ऐसे अवतार ! यह आत्मा का ज्ञान और आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना, आत्मस्वरूप की पहिचान बिना अनन्तबार ऐसे (अवतार) मिथ्यादर्शन के कारण किये है।

'**जब कभी इस जीव ने अकामनिर्जरा की, तब मरकर उस निर्जरा के प्रभाव से (भवनत्रिक) भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों में से किसी एक का शरीर धारण किया।**' तीन का कोई एकसाथ नहीं होता, ऐसा। '**वहाँ भी अन्य देवों का वैभव देखकर**'... देखो ! दूसरे देवों का वैभव देखर '**पाँच इन्द्रियों के विषयों की इच्छारूप अग्नि में जलता**

रहा...' और यहाँ जैसे दूसरों का वैभव देखकर जलते है न ? सुलगते हैं न ? मेरे पास पचास हजार, उसके पास पाँच लाख; मेरे पास दो लाख, उसके पास दस लाख एसे की ऐसी होली सुलगती ही है। वहाँ देव में भी ऐसी जलन है। अन्य देव बहुत सुन्दर हो, बड़ी पदवी का देव हो (उसके नीचे नोकर हो), आहा...हा...! हम नोकर, यह बड़ा देव। उसने क्या किया ? हमारा हाल किया - यह जलन।

यहाँ दो भाई हों और उनमें (एक) पाँच करोड़, दस करोड़ का (स्वामी) हो जाए तो दूसरे का जलन होती है। गाँव में एक मुसलमान बढ़ जाए - उसकी जलन इसे नहीं होती। है ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- हाँ वह बाहर का आदमी है - ऐसा कहता है। बाहर के आदमी के कारण (नहीं जलता।), घरके आदमी (देखकर जलता है।) डॉक्टर ठीक कहता है। कारण कि बाहर के आदमी के साथ हमे क्या संबंध हो ? तुम्हारे क्या ? लड़का नहीं मिलता। सबके लड़के कमाते है, परन्तु यदि एक बढ़ गया होवे तो, अब नहीं रहूँ साथ, तुम्हारे आमदनी बड़ी है, सरखाई है, इसलिए हम शामिल नहीं। ए...ई ! जलन होती है। अरे...! इस पाँच लाख इकट्ठे हुए। हमारे तो पूरी जिन्दगी में एक एक को पाँच लाख आवे ऐसा तो हुआ नहीं। ऐ... जलन होती है।

'**मन्दारमाला मुरझाते देखकर...**' लो ! इन भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष को यहाँ भी माला होती है, हाँ ! शरीर प्रमाण माला। माला, फूल की माला (होवे), ऐसी कोई माला मुरझाते देखकर, उन्हें ऐसी माला ही होती है। अभी बड़े-बड़े (लोग) नहीं (पहनते) ? पूरे शरीर प्रमाण बड़ी लम्बी माला होती है। वह मुरझाये तब दिखता है कि पुण्य क्षीण हुई, आयुष्य पूरा हो गया। ओ..हो..! यह देव कहते कि यह मुरझाये तब आयुष्य पूरा होता है।

'**शरीर तथा आभूषण की कान्ति क्षीण होती देखकर...**' लो ! शरीर भी क्षीण होता दिखता है। अन्दर दिखे ऐसा, हाँ ! हाय... हाय... बस ! चले अब !

मुमुक्षु :- माला।

उत्तर :- ऐसा होता है कुछ। बड़े शुभभाव वालों को होता है। पूरे शरीर प्रमाण बड़ी माला होती है। स्वयं की कान्ति हीन देखकर आभूषणों की कान्ति भी मन्द दिखती है। देखो ! पुण्य के

कारण, देखो ! आभूषण शाश्वत् है, परन्तु आभूषण शाश्वत (होने) पर भी वह पुण्य घटा न ? पुण्य का दिखाव ऐसा मन्द दिखता है। देखो ! विशेषता देखो ! आभूषण शाश्वत है। वे कहाँ तुम्हारे यहाँ के घड़े हुए है ? उनकी आँख में ही ऐसा दिखता है। कर्म का उदय मन्द हो गया, अब यहाँ से मरकर जाना है। आभूषण ऐसे दिखते हैं। देखो न ! यहाँ गहने पहनते हैं, तब कैसे पहनते हैं ? देखो न ! समान करके ऐसे ऐसे ऐसे ऐसे लटकते झूलते, लटकते झूलते, यहाँ डाले यह, यहाँ डाले। वे मारवाड़ी तो फिर क्या करे, नहीं करते ? मारवाड़ी नहीं ? उनमें कुछ भान न हो और उसमें से कुछ गिर गया होवे तो हाय... हाय... और यही ऐसे ऊपर (चोट) लगी हो शोभा में खड़े... कहते हैं। ऐसे (अवतार) अनन्तबार किये।

उनकी शोभा मन्द देखकर '**अपना मृत्युकाल निकट है - ऐसा अवधिज्ञान द्वारा...**' अवधि अर्थात् विभंग। मिथ्यादृष्टि को तो विभंग होता है। समझे ? उस विभंग ज्ञान द्वारा '**जानकर हाय ! अब यह भोग मुझे भोगने को नहीं मिलेंगे।**' हाय... हाय...! अब यहाँ से चला जाऊँगा। अरबों वर्ष यहाँ रहा, असंख्य वर्ष रहा... अब ? चले जाओ अन्यत्र... करते है न देव भी हाय... हाय.. करते हैं। नारकी हाय, मनुष्य हाय, देव और तिर्यंच। निगोद तो बिचारे हाय कहाँ कर सकते हैं ? महादुःख में लीन हो गये हैं।

'**ऐसे विचार से रो-रोकर अनेक दुःख सहन किये।**' लो ! समझ में आया ? भवनत्रिक का (चित्र) किया है, हाँ ! ऐसे अवतार भव के किये। '**अकामनिर्जरा यह सिद्ध करती है कि कर्म के उदयानुसार ही जीव विकार नहीं करता...**' ऐसा कहाँ से आया ? कर्म के उदय-प्रमाण होवे तो यह इच्छा मन्द करके पुण्य किस प्रकार बाँधे ? जितना कर्म का उदय है, उस प्रमाण यहाँ विकार होवे तो यह अकामनिर्जरा सिद्ध नहीं होती। लोग समझे बिना कहते हैं। '**चाहे जैसा कर्मोदय होने पर भी जीव स्वयं पुरुषार्थ कर सकता है।**'

देवगतिमें वैमानिक देवोंका दुःख

जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय;
तहँतें चय थावर तन धरै, यों परिवर्तन पूरेकरे।।१६।।

अन्वयार्थ :- (जो) यदि (विमानवासी) वैमानिक देव (हू) भी (थाय) हुआ [तो वहाँ] (सम्यग्दर्शन) सम्यग्दर्शन (बिन) बिना (दुख) दुःख (पाय) प्राप्त किया [और] (तहँते) वहाँसे (चय) मरकर (थावर तन) स्थावर जीव का शरीर (धरैं) धारण करता है, (यों) इसप्रकार [यह जीव] (परिवर्तन) पाँच परावर्तन (पूरे करै) पूर्ण करता रहता है।

भावार्थ :- यह जीव वैमानिक देवों में भी उत्पन्न हुआ किन्तु वहाँ इसने सम्यग्दर्शन के बिना दुःख उठाये और वहाँ से भी मरकर पृथ्वीकायिक आदि स्थावरों* के शरीर धारण किये; अर्थात् पुनः तिर्यंचगतिमें जा गिरा। इस प्रकार यह जीव अनादिकाल से संसार में भटक रहा है और पाँच परावर्तन कर रहा है।।१६।।

'**देवगति में वैमानिक देवों का दुःख**' अब अन्तिम बड़ा देव।

जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय;
तहँतें चय थावर तन धरै, यों परिवर्तन पूरेकरे।।१६।।

देखो ! इसमें दिखाव कैसा दिया है, देखा ? एक देव है, वह मरकर वनस्पति में जाता है, देखो ! दिखा ? इस और यह देव है। वह मरकर... वनस्पति में जाता है। है ? भाई ! वैमानिक का देव, बड़ा दो सागर का आयुष्य होता है। दो सागरोपम। असंख्यात अरब वर्षों का पल्योपम और ऐसे दस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम का सागर; ऐसे दो सागर; वह मरकर देखो ! इस वृक्ष में उत्पत

---

* मिथ्यादृष्टि देव मरकर एकेन्द्रिय होता है, सम्यग्दृष्टि नहीं।

हुआ, देखो ! यह वृक्ष। वनस्पति के वृक्ष का कहीं अच्छा फूल होता है न ?वहाँ मरकर अवतरित होता है झट से ! आहा..हा..! अवतरित होता है न ? यह जीव अवतरित हुआ होगा या नहीं ? यह अवतरित हुआ, उसकी तो बात चलती है। अनन्तबार देव मरकर एकेन्द्रिय हुआ। हाय... हाय...! ऐसे अनन्त अवतार मिथ्यादर्शन के प्रभाव से किये।

'**यदि वैमानिकदेव भी हुआ (तो वहाँ) सम्यग्दर्शन बिना...**' सम्यग्दर्शन से रहित जीव की बात है, हाँ ! वैमानिकदेव में सम्यग्दृष्टि है, वे तो फिर एकावतारी होकर मोक्ष जाते हैं। सम्यग्दर्शनवाला (देव की) बात इसमें नहीं है। '**सम्यग्दर्शन के बिना दुःख प्राप्त किया। वहाँ से मरकर (थावर तन) स्थावरजीव का शरीर धारण करता है...**' एकेन्द्रिय होता है, एकेन्द्रिय ! आहा...हा...! पृथ्वी में उत्पन्न हो, हीरा-माणेक में उत्पन्न हो, जल में उत्पन्न हो, ऊँचा-अच्छा पानी होता है न ? स्वातिबिन्दु आदि, मोती पकते और होते हैं न ? उसमें उत्पन्न होता है। फूल में अवतरित होता है, अच्छे चम्पाके, गुलाब के फूल होते है न ? देव मरकर वहाँ अवतरित होता है। एकेन्द्रिय वनस्पति होता है। ऐसे अवतार अनन्तबार किये हैं। समझ में आया ?

'**(परिवर्तन) पाँचो परावर्तन (पूरे करै)**' लो ! यह अन्तिम श्लोक है न ? इस प्रकार निगोद, तिर्यंच, मनुष्य, देव...। अनन्त बार द्रव्य में सभी रजकण ग्रहण किये - ऐसे अनन्त अवतार द्रव्य से किये; क्षेत्र में अनन्त अवतार किये; काल में एक-एक समय में अनन्त अवतार किये। अनन्त चौबीसी में एक-एक चौबीसी के एक समय में अनन्त अवतार किये। ऐसे एक भव

के अनन्त अवतार और भाव के अनन्त अवतार। भाव अर्थात् शुभाशुभभाव, उस शुभाशुभभाव के भी अनन्त अवतार किये। समझ में आया ? भव अनन्त... भाव अनन्त, द्रव्य, क्षेत्र और काल प्रत्येक में अनन्त-अनन्तभव किये। जितने रजकण हैं, उतने लिये, छूटे। अनन्त बार। क्षेत्र में एक-एक क्षेत्र में अनन्तबार जन्मा और मरा। अनन्त चौबीसी में एक-एक चौबीसी पहले से शुरुकरो तो एक समय में जन्म, दूसरे समय में जन्म, तीसरे समय ऐसे अनन्तबार जन्म, अनन्तबार मरण एक-एक चौबीसी मे। ऐसे एक-एक भव (गति) में अनन्तभव और एक-एक शुभ-अशुभ में अनन्तभाव। ऐसे अनन्तबार शुभभाव, अनन्त बार अशुभभाव किये और परिवर्तन पूरे किये - ऐसा यहाँ अन्त में कहते हैं। इस चार गति के दुःख मिथ्यादर्शन के प्रभाव से, आत्मदर्शन के बिना, सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना इसने ऐसे चार गति के दुःख और परिभ्रमण पूरा किया। लो !

'**भावार्थ :- यह जीव वैमानिक देवों में भी उत्पत हुआ, किन्तु वहाँ इसने सम्यग्दर्शन के बिना दुःख उठाये और वहाँ से भी मरकर पृथ्वीकायिक आदि स्थावरों में...**' इत्यादि अर्थात् पृथ्वी, जल और वनस्पति, तीन ही/ तीन लेना। '**शरीर धारण किये अर्थात् फिर से तिर्यंचगति में आ पड़ा। इस प्रकार यह जीव संसार में अनादिकाल से...**' यह पहली ढ़ाल में पूरा किया। इस प्रकार '**अनादि काल से भटक रहा है और पाँच पाँच परावर्तन कर रहा है।**' सब दुःखों की व्याख्या आ गयी। अब, इसके बाद दूसरी ढाल में सीधे लेगें - '**ऐसे मिथ्यादृग...**' ऐसा लेंगे, लो ! है ?

इस प्रकार चार गति के भव अनन्तबार मिथ्यादर्शन के कारण, मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र के कारण (किये)। इसलिए पहले यह बात की। भटका है मिथ्यादर्शन के कारण। इसलिए मिथ्यादर्शन आदि का क्या स्वरूप है ? - यह दूसरी ढाल में कहेंगे। (विशेष कहेंगे।)

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)